* श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष १० | गौराब्द ४७८, मास—पद्मनाभ २६, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार, ३१ आश्विन, सम्वत् २०२१, १७ अक्टूबर १९६४ | संख्या ५

श्रीश्री-दामोदराष्टकम्

श्रीश्रीकृष्णद्वैपायन-वेदव्यास-विलिखितं

नमामीश्वरं सच्चिदानन्द-रूपं, लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।
यशोदा-भियोलूखलाद्धावमानं, परामृष्टमत्यन्ततोद्रुत्य गोप्या ॥१॥

रुदन्तं मुहुर्नेत्र - युग्मं मृजन्तं, कराम्भोज-युग्मेन सातङ्क- नेत्रम् ।
मुहुः श्वास-कम्प त्रिरेखाङ्क-कण्ठ,-स्थित-ग्रैवं दामोदरं भक्तिबद्धम् ॥२॥

इतीदृक् स्व-लीलाभिरानन्द-कुण्डे, स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं, पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥३॥

वरं देव ! मोक्षं न मोक्षावधिं वा, न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदन्ते वपुर्नाथ ! गोपालबालं, सदा-मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥४॥

इदन्ते मुखाम्भोजमव्यक्त-नीलैर्वृतं कुन्तलैः स्निग्ध-रक्तैश्च गोप्या ।
मुहुश्चुम्बितं बिम्ब-रक्ताधरं मे, मनस्याविरास्तामलं लक्ष लाभैः ॥५॥

नमो देव! दामोदरानन्त! विष्णो!,प्रसीद प्रभो! दुख-जालाब्धि-मग्नम् ।
कृपादृष्टि वृष्ट्यातिदीनं वतानु, गृहाणेश ! मामज्ञमेध्यक्षि-दृश्यः ॥६॥
कुबेरात्मजौ बद्ध-मूर्त्यैव यद्वत्, त्वया मोचितौ भक्ति-भाजौ कृतौ च ।
तथा प्रेम-भक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ,न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह॥७॥
नमस्तेऽस्तु दाम्नेस्फुरद्दीप्ति-धाम्ने, त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने ।
नमो राधिकायै त्वदीय-प्रियायै नमोऽनन्त-लीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८॥

अनुवाद—

जिनके कपोलोंपर मकराकृत कुण्डल क्रीड़ा करते हैं, जो गोकुल नामक अप्राकृत चिन्मय धाममें सुशोभित हैं, जो (दधिभाण्डको फोड़नेके अपराध हेतु) माँ यशोदाके भयसे ऊखल परसे कूदकर अत्यन्त वेगसे भाग छूटते हैं और जिन्हें उसी दशा में नन्दरानी उनसे भी वेगपूर्वक दौड़कर पकड़ लेती हैं, उन सच्चिदानन्द-विग्रह सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी मैं बन्दना करता हूँ ॥१॥

जननीके तर्जनसे भयभीत होकर जो रोते हुए बार-बार अपने दोनों नेत्रोंको युगल हस्तकमलोंसे मसल रहे हैं, जिनके नेत्रयुगलकी चितवन अतिशय भीतिपूर्ण है; बार-बार सुबकनेके कारण जिनके त्रिरेखायुक्त कंठमें पड़ी हुई मोतियोंकी माला कम्पित हो रही है और जिनका उदर (माँ यशोदाके वात्सल्यभक्तिके बलसे) रस्सीसे बँधा हुआ है; उन सच्चिदानन्द - विग्रह श्रीदामोदरकी मैं बन्दना करता हूँ ॥२॥

जो अपनी ऐसी लीलाओंके द्वारा गोकुलवासियों को आनन्द-सरोवरमें नित्यकाल निमग्न रखते हैं तथा जो ऐश्वर्यपूर्ण ज्ञानीभक्तोंके निकट "मैं अपने ऐश्वर्यहीन प्रेमी भक्तों द्वारा जीत लिया गया हूँ"– इस प्रकारका भाव प्रकाश करते हैं, उन दामोदर कृष्णकी मैं पुनः पुनः प्रेमपूर्वक शत-शत-बन्दना करता हूँ ॥३॥

हे देव ! यद्यपि आप वर देनेमें सब प्रकारसे समर्थ हैं, फिर भी मैं आपसे वर रूपमें न तो मोक्ष की याचना करता हूँ और न मोक्षकी परम अवधि-रूप वैकुण्ठ आदि लोकोंकी प्राप्ति ही चाहता हूँ। न मैं श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्तिद्वारा प्राप्त किया जानेवाला कोई दूसरा वरदान ही आपसे माँगता हूँ। हे नाथ ! मैं तो आपसे इतनी ही कृपाकी भीख माँगता हूँ कि आपका बालगोपालरूप मेरे हृदयमें निरन्तर अवस्थित रहे, मुझे अन्य वस्तुओंसे क्या प्रयोजन है ? ॥४॥

हे देव ! अत्यन्त श्यामलवर्ण एवं कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए चिकने और घुँघराले बालोंसे घिरा हुआ तथा माँ यशोदाके द्वारा बार-बार चुम्बन किया हुआ तुम्हारा मुखड़ा और पके हुए बिम्बा-फलके सदृश लाल-लाल अधर-पल्लव मेरे हृत्पटलपर सदा थिरकते रहें, मुझे लाखों प्रकारके दूसरे लाभों-से कोई प्रयोजन नहीं है ॥५॥

हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे विष्णु !

तुम्हें प्रणाम है । प्रभो ! मुझ पर प्रसन्न हों एवं दुःखसमूहरूप समुद्रमें डूबे हुए मुझ अतिदीन और अज्ञ जीवको कृपा कर उद्धार कर दो तथा कृपा दृष्टिकी वर्षासे निहाल कर मेरे नेत्रगोचर होओ ॥६॥

हे दामोदर ! जिस प्रकार तुमने अपने दामोदर रूपसे ऊखलमें बँधे रहकर भी कुबेरके दोनों पुत्रोंको वृक्षयोनिसे उद्धार तो किया ही, साथ-ही-साथ उन्हें अपनी भक्ति भी प्रदान की थी, उसी प्रकार मुझे भी अपनी निजस्व प्रेमभक्ति दान करो—यही मेरा एक मात्र आग्रह है । किसी भी अन्य प्रकारके मोक्षादिके लिये मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है ॥७॥

हे दामोदर ! तुम्हारे उदरको बाँधनेवाली महारज्जुको प्रणाम है, निखिल ब्रह्मतेजके आश्रय और सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत तुम्हारे उदरको नमस्कार है, तुम्हारी प्रियतमा श्रीमतीराधिकाके श्रीचरणोंमें मेरा बारम्बार प्रणाम है और तुम्हारे अलौकिक लीला-विलासको भी मेरा शत-शत प्रणाम है ॥८॥

महान्त गुरुतत्त्व

श्रीचैतन्यदेवकी अप्राकृत शिक्षामें जो पारङ्गत हो चुके हैं, उन तत्त्वविद् महानुभावोंकी शिक्षामें हम "चैत्यगुरु" और "महान्तगुरु"—ये दो शब्द देख पाते हैं । प्रत्येक जीवके हृदयमें भगवान ही चैत्यगुरुके रूपमें विराजमान होकर जीवके सत्-असत् प्रवृत्तियोंका नियमन करते हैं । चैत्यगुरु, महान्त गुरुका निर्देश करते हैं । और महान्त-गुरु सेवक- सम्प्रदायके वर्त्मप्रदर्शक गुरुका कार्य करते हैं ।

शास्त्रकीर्तनकारी, शास्त्रव्याख्याकारी, शास्त्रीय-शासनानुमोदित - अनुष्ठानकारी व्यक्ति अनर्थयुक्त, अश्रुत, अनभिज्ञ और अस्थिर चित्तवाले बालिश व्यक्तियोंके चंचल चित्तको नियमित करके सुचारु गति प्रदान करते हैं । ऐसे शिक्षागुरु, दिव्यज्ञान-दाता सद्गुरुकी प्राप्तिसे पूर्व श्रद्धालु जीवकी सहायता करते हैं, इसलिये उनको "वर्त्मप्रदर्शक गुरु" कहा गया है ।

शास्त्र - श्रवणमें, साधुके मुखसे भगवत-कथा कीर्तनमें अनुगमन आदिके प्रति रुचि उत्पन्न होनेपर जीव अपनेको दिव्यज्ञानके संग्रहके कार्यमें नियुक्त करता है । यहाँ भी चैत्यगुरु जीवके हृदयमें श्रौत-पथकी उपकारिताका विचार प्रकाशित करते हैं । चैत्यगुरु की कृपाके बिना वर्त्मप्रदर्शकगुरु, महान्त-दीक्षागुरु और महान्त शिक्षागुरु—इनके चरण-कमलोंकी सेवा प्राप्त करनेकी किसी प्रकार भी योग्यता नहीं होती । जब कृष्ण-प्रसादज सुकृतिका उदय नहीं होता, तब तक जीव चैत्यगुरुकी निष्कपट कृपा नहीं प्राप्त कर सकते हैं । जीवके हृदयमें जबतक धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चार प्रकारके कैतव प्रबल रहते हैं, तब तक चैत्यगुरु जीवको कुयोगी-

वैभवानन्द विवेकानन्दकी ओर अग्रसर कराता है। परन्तु भक्ति विवेककी महिमा लाभ करनेकी योग्यता होनेपर चैत्यगुरु कृपापूर्वक निष्कपट वैष्णवमहान्त-दीक्षागुरु और महान्त शिक्षागुरुके प्रति विश्वास प्राप्त करनेके लिए प्रसाद (कृपा) प्रदान करते हैं।

महान्त गुरु आदि-शिक्षागुरुके रूपमें जीवके मायिक अहंकारको दूर करनेका यत्न करते हैं। उनके यत्नके फलस्वरूप जीव महान्त-दीक्षागुरुको प्राप्त करता है। श्रीगुरुदेव वैकुण्ठ लीलामय होनेपर भी इस जगतमें अवतरण करते हैं। वैसे अवतरण-की अवलम्बनरज्जु है—भगवद्भक्ति। संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंका उद्धार करते समय वे स्वयं भगवानकी सेवाको छोड़कर आत्मबलिदान करनेके लिये प्रस्तुत नहीं होते। परन्तु वे इस जगतमें अव-तीर्ण होकर ऐसी लीला करते हैं, मानों वे भी हम जैसे बद्धजीवोंकी भाँति मायाद्वारा अभिभूत जीव ही हैं। इसलिये हम उनको भगवत्-कृपावतार न मानकर अपने चिरसंचित अपराधोंके कारण अपने जैसा मरणशील मानव मानकर उनके प्रति ईर्ष्या द्वेष करते हैं तथा गुरुपादपद्मकी सेवासे विमुख हो पड़ते हैं।

श्रौत-पथमें ही गुरु-ग्रहणकी प्रथा वर्तमान है। अश्रौत या तर्क-पथमें गुरुग्रहण-अनुष्ठानका आदर नहीं देखा जाता। जो लोग श्रौतपथका आदर नहीं करते, वे चैत्यगुरुद्वारा विमूढ़ होकर तर्कपथका अवलम्बन करते हैं। अश्रौतपथावलम्बी अहंकार के वशवर्ती होकर स्वयं गुरु होनेकी चेष्टा करनेमें भी नहीं हिचकते।

तार्किक व्यक्ति कदापि गुरु नहीं हो सकते। श्रौत पन्थी ही गुरु हो सकते हैं। चैत्यगुरुकी कृपासे महान्त-गुरु निर्दिष्ट होते हैं। चैत्यगुरुकी कृपा दो प्रकारकी होती है। उन दो प्रकारकी कृपाके फलस्व-रूप कोई-कोई आध्यक्षिक हो पड़ते हैं और कोई-कोई अधोक्षजसेवक। जिन लोगोंने जड़-विषय-भोगको ही जीवनका एकमात्र चरम सिद्धान्त बना लिया है, उनको 'अन्याभिलाषी' कहा जाता है। सौभाग्यवश उनमें प्रयोजक कर्त्ताके नियमन प्रभावसे सत्कर्मके प्रति झुकाव और आदर भाव देखा जाता है। अतएव उनमें-कर्मकाण्डके प्रति रुचि होती है। वे अपनेको 'कर्त्ता' मानकर प्रकृतिके त्रिविधगुणोंके अन्तर्गत अनुष्ठित क्रियाओंका भोक्ता बनकर अहंकार विमूढ़ताको ही श्रेय-पथ मानते हैं। परन्तु वास्तवमें प्रेयःपन्थको ही वे भूलसे श्रेयःपन्थ मान लेते हैं। यही चैत्यगुरुकी मायाविस्ताररूपी कपट कृपा है। जिन्होंने मुण्डक श्रुतिका पाठ किया है, वे यह जानते हैं कि प्रयोजन कर्त्ता अर्थात् भगवान्-की सेवा द्वारा श्रेयःकी प्राप्ति होती हैं और प्रयोजन कर्त्ताके प्रति सेवा-विमुख होकर प्रयोज्यकर्त्ता जीव जब स्वयं अपनेको ही विषयोंका भोक्ता मानने लगता है, उस समय वह भक्तिरूपी श्रेयःपथसे च्युत हो पड़ता है।

दिव्यज्ञान प्रदाता महान्त दीक्षागुरु एक ही होते हैं, क्योंकि वे अद्वय ज्ञानके प्रियतम सेवक हैं। अद्वयज्ञानका सेवक होनेके नाते उनके ज्ञातव्य वस्तु एक ही हैं; इसलिये वे भी असमोर्द्ध्वतत्त्व हैं। वे विषय जातीय असमोर्द्ध्व न होनेपर भी आश्रय-जातीय असमोर्द्ध्वकी लीला दिखलानेवाले हैं।

शिक्षागुरु दीक्षागुरुके वास्तविक ज्ञानलब्ध

और शरणागत शिष्यको शिक्षा दिया करते हैं। उनकी वह शिक्षा दीक्षागुरुके विचारोंके अनुकूल और दीक्षागुरु द्वारा प्रदत्त दिव्यज्ञानकी पुष्टि करनेवाली होती है। इसलिये शिक्षागुरुका बहुत्व रहने पर भी अद्वयज्ञानदाता दीक्षागुरुसे उनका मतभेद नहीं होता। परन्तु वे दीक्षादाताके अकृत्रिम बन्धु होते हैं।

दिव्यज्ञान प्राप्त होने पर जीवके स्वरूपका उद्बोधन होता है। उन्मेषित स्वरूपमें स्थित होकर इहजगत और परजगतमें जिस प्रकार हरि-सेवा करनी होती है, इस विषयमें जो उपदेशदाता होते हैं, उन्हें ही "शिक्षागुरुवर्ग" कहते हैं। इन शिक्षागुरु रूप सेना वाहिनीके अग्रगामी जो (Precursor) धर्मप्रदर्शक गुरु हैं, वे शिक्षागुरुके ही प्रागभाव हैं। दोनोंके मध्यस्थलमें दीक्षादाता महान्तगुरु विराजमान रहते हैं।

भगवानकी जीवके प्रति जो दया होती है, उस दयारूपी प्रसादको वितरण कर जगतका कल्याण करते हैं। जो ज्ञानके विकारसे विकृत हैं, कर्मकाण्डके जालमें फँसे हुए हैं, जो यथेच्छाचारके स्रोतमें बह रहे हैं, उनको सद्बुद्धि प्रदान करनेके लिये तथा जीवमात्रको कृष्णसेवामें नियुक्त करनेके लिये ही श्रीगुरुदेवका इस जगतमें आगमन है। वे कमलके पत्तेके उपरके जलबिन्दुकी भाँति अनासक्त भावसे संसारके विषयोंको ग्रहण करके भी विषयोंकी बाह्य-भोगधारणाको दूर रखकर जीवोंको कृष्णके साथ सम्बन्धयुक्त करते हैं। इसलिये विषयासक्त जड़ाभिनिविष्ट मनुष्य उनको विषयविरक्त मानकर घृणा करते हैं। इन विषयियोंकी अपेक्षा मूढ़ मत्सर व्यक्ति भगवद्भक्तोंकी निर्विषयिनी भक्ति-चेष्टाओंको भी विषय-चेष्टा समझकर उनकी सेवासे विमुख हो पड़ते हैं। यहाँ चैत्यगुरु उनके श्रेयः पथका अनुमोदन करके, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ही प्रयोजन है—उनको ऐसा बोध कराते हैं। उस समय वे भक्तिका स्वरूप समझनेमें असमर्थ होते हैं तथा नित्यवृति भजन और भजनीय वस्तुके प्रति उदासीन रहते हैं। भगवान जिनके ऊपर प्रसन्न होते हैं, उनके हृदयमें ऐसी प्रेरणा प्रदान करते हैं जिससे वह भगवद्भक्तको महान्तगुरुके रूपमें वरण करे। भक्त जैसा विज्ञ, परविद्या पारंगत, महत्तम, सज्जनकुल चूड़ामणि, दूसरा कोई नहीं है। भगवानकी कृपासे ही जीव महान्त महाभागवत श्रीगुरुदेवके चरणनखोंकी शोभा सन्दर्शन कर अपने जीवनको धन्य करनेमें समर्थ होता है।

एक गुरुवादिगण एकमात्र "मेरी-पुत्र" को ही जगद्गुरु मानते हैं, परन्तु उनके आश्रित अकृत्रिम सुहृतवर्गको "महान्त गुरु" माननेके लिये प्रस्तुत नहीं होते। उनका कथन यह है कि—'प्रत्येक महान्तगुरुमें अवश्य ही दोष वर्तमान रहता है, इसलिये ईशामसीहके अतिरिक्त और किसी भी दूसरेको गुरु नहीं माना जा सकता है। ईशाके यथार्थ अनुगामी बारह शिष्य अथवा समय-समय पर उदित होनेवाले उनके विशुद्ध अनुगतजन भी जगत् गुरु नहीं हो सकते।" इन लोगोंका ऐसा एक गुरुवादका विचार या एक जन्मवादका विचार पापमें संश्लिष्ट होनेकी आशंकासे कल्पितमात्र हुए हैं। पापपंकमें निमज्जित व्यक्ति मुक्त पुरुषोंके सम्बन्धमें अनभिज्ञ रहनेके कारण एकगुरु-मतका तात्पर्य समझनेमें असमर्थ होते हैं। "एकगुरु" का तात्पर्य अद्वयज्ञान महान्त गुरुतत्त्वसे है। परन्तु पापी एवं अपराधी व्यक्ति अपराधोंके फल स्वरूप जड़से ही चेतनकी सृष्टि" आदि कुमतों की सृष्टि करते हैं। ❀❀❀

शिक्षागुरुदेव किसी प्रकारकी संकीर्ण शिक्षा नहीं देते। शिक्षागुरुके अभावमें अनेक स्थिलोंमें महान्तगुरु द्वारा प्रदत्त अद्वयज्ञान भी विपर्यस्त हो पड़ता है।

—जगतगुरु श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

श्रीबलभद्रजन्मोत्सवका शास्त्रीय विवेचन

जिस प्रकार श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी प्रति वर्ष भाद्रपद मास कृष्णपक्षमें निश्चित समय पर समस्त भारतमें एक साथ मनायी जाती है, उस प्रकार श्रीबलभद्र जन्मोत्सव सर्वत्र समारोहपूर्वक मनाया जाने पर भी विभिन्न सम्प्रदायों एवं विभिन्न स्थानोंमें किसी एक निश्चित तिथिमें न मनाया जाकर विभिन्न तिथियोंमें मनाया जाता है। व्रज में सर्वत्र यह उत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया जाता है।

श्रीबलभद्र - जन्मोत्सवके सम्बन्धमें कतिपय विद्वानोंके सिद्धान्तों एवं पुराण वाक्योंमें विरोधसा दृष्टिगोचर होता है। इस विषयमें निम्नलिखित ये चार विभिन्न विचार हैं—

(१) भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको।

(२) भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको।

(३) वैशाख मासमें।

(४) भाद्रपद शुक्ल षष्ठीको।

(१) इसमें से प्रथम पक्ष माननेवालोंका आधार पद्मपुराण है। पद्मपुराणमें स्पष्टरूपेण कृष्ण पक्ष अष्टमीमें बलभद्रका आविभाव उल्लिखित है—

कृष्णाष्टम्यां तु रोहिण्यां प्रौष्ठपद्यां शुभोदये।
रोहिणी जनयामास पुत्रं सङ्कर्षणं प्रभुम्॥
(प० पु० पृ० ८७० मनसुखराय प्रकाशन)

उपर्युक्त श्लोकके पठनसे किसी भी शंकाका अस्तित्व ही अवशिष्ट नहीं रहता। मास, तिथि, रोहिणीजी, सङ्कर्षण और जन्म तथा शुभ ग्रह आदि सभी बातें एक साथ इस श्लोकमें उपलब्ध हैं।

इसी पुराणमें आगे यह भी लिखा है कि बलदेवके जन्मके बाद देवकी गर्भवती हुईं और उसे गर्भवती देखकर कंस भयभीत हो गया।

ततस्तु देवकी गर्भमापेदे भगवान हरिः।
आपन्न गर्भां तां दृष्ट्वा कंसो भय निपीड़ितः॥

आगेके श्लोकमें पूर्ववत् स्पष्टरूपमें भगवान व्रजचन्द्रके आविर्भावकी अष्टमी तिथि भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, अर्द्धरात्रिका उल्लेख है—

ततस्तु दशमे मासि कृष्णे नभसि पार्वति।
अष्टम्यामर्द्ध रात्रे च तस्यां जातो जनार्दनः॥

इस प्रकार पद्मपुराणके इन वाक्योंके अनुसार बलभद्र जन्मोत्सव कृष्णाष्टमीको ही होना चाहिये।

(२) द्वितीय पक्ष—श्रीगौड़ीय वैष्णव भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको श्रीबलदेवका जन्मोत्सव मनाते हैं।

(३) तृतीय पक्ष—श्रीजीव गोस्वामीका मत—

गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीजीव गोस्वामीका प्रमुख स्थान है। ये परमोच्च कोटिके भक्त तथा

भारतीके अवतार थे। षट्सन्दर्भ आदि ग्रन्थ इन्हीं महानुभाव द्वारा रचित हैं। आपने बलभद्र तथा कृष्णके जन्मकालमें चार मासका अन्तर ही माना है। प्रमाणरूपमें हरिवंश पुराणका उद्धरण भी प्रस्तुत किया है–

प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम्।
प्रजातां पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात कान्ततराननम्॥
(हरिवंशपुराण, वि० प० ५।१)

श्रीजीव गोस्वामी प्रबल तर्क देते हुये अपना मत प्रकट करते हुये लिखते हैं (श्रीमद्भागवत क्रम, सन्दर्भ अध्याय ५; श्लोक २७ में) कि यदि इन दोनों भ्राताओंका जन्म एक वर्ष आगे-पीछे होता तो अवश्य ही वसुदेवजी उन्हें समान वयःका नहीं कहते, जैसाकि निम्न श्लोकमें स्पष्ट है–

वर्धमानावुभावे तौ समानवयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन नन्दगोप तथा कुरु॥
(हरिवंश पुराण वि० प० ५।९)

अर्थात्, नन्दगोप! इन दोनोंकी अवस्था प्रायः समान है। वे दोनों जिस तरह साथ-साथ तुम्हारे उस व्रजमें बढ़ते हुये शोभा पा सकें, वैसा यत्न करो।

इसके साथ भागवतके वे श्लोक भी इसी मत की पुष्टिमें उद्धृत किये जा सकते हैं, जिनमें भगवान श्रीकृष्ण और बलदेवकी घुटुवन चलन आदि लीलाएँ एक ही अवस्था वाले बालकोंके रूपमें वर्णित हैं।

गोस्वामीजीने स्पष्ट घोषणा की है कि जिस समय भगवान श्रीकृष्ण आठ मासके थे, उस समय श्रीबलभद्र द्वादश मास के थे। अतः भगवान श्रीकृष्णसे श्रीबलभद्र चार मास ज्येष्ठ हैं– यह सिद्ध हुआ। श्रीजीव गोस्वामीकी निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"श्रीपुरुषोत्तम द्वारिति तज्जन्म नक्षत्रे क्रियते तच्च श्रीकृष्णस्याष्ट मासिकत्वात् तस्य तु द्वादश मासिकत्वात् उपपद्यत इति"

आपत्ति–(१) यदि गोस्वामीजीके इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाय तो श्रीबलभद्रका जन्म वैशाख मासमें माना जायगा। क्योंकि वे कृष्ण से चार ही मास बड़े हैं। पर इसका कोई निर्भर योग्य प्रमाण क्या है जिसके आधारपर यह मत माना जाय? साथ ही गौडीय सम्प्रदायमें भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको यह उत्सव क्यों मनाया जाता है? आदि प्रश्नोंका उत्तर न मिलने तक श्रीबलभद्र की खेलने आदि लीलाओं तथा गर्ग द्वारा नामकरण आदिकी कथाओं पर निर्भर रह कर ही इस मतको ग्रहण किया जाय यह विचारणीय प्रश्न है।

आपत्ति २–श्रीजीव गोस्वामीजीका एक अन्य ग्रन्थ रत्न भारतीय वाङ्मयमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है, जिसका नाम है-'श्री गोपालचम्पू'। इस ग्रन्थके आधारपर श्रीबलदेवका जन्मोत्सव श्रावण माससे पूर्व श्रवण नक्षत्रमें लिखा है। पर इससे चार मास पूर्वकी तिथिका स्पष्टीकरण नहीं है। चम्पूकी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'सान्द्र शुभ्रता विभ्राजमानतया पौर्णमासी चन्द्रमसमिव दर्शित विक्रम क्रमतया सिंहबधुः शावकमिव निर्मल परिमल परिमल धारया नव

कमलिनी धवलमिव सर्वं श्रवणसङ्ग मङ्गलतया निरवद्यविधता यशस्तोममिव च ।'

इस ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि जब रोहिणी जी घोड़ीपर चढ़कर व्रजमें श्रीयशोदासे मिली थीं, तब उनके तीन मासका गर्भ था। यहाँ माघ मासमें योगमायाका आगमन मान लिया जाय तो उसका जन्म भाद्रपद में निश्चित होनेसे आठ मासका होना सिद्ध है। परन्तु पद्मपुराणके अनुसार कृष्णका जन्म तो दशम् मासमें ही देवकीके गर्भ से हुआ है। अतः इसके अनुसार कार्तिक मासमें भगवान श्रीकृष्णका तेज देवकीके गर्भमें स्थापित होना चाहिये।

समाधान स्वरूप पद्मपुराणकी कथा कल्पान्तर की भी मान ली जाय तो श्रीमद्भागवतमें दोनों की कुमारावस्थाका एक ही साथ आगमनका वर्णन है-

'एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।'

(४) चतुर्थ पक्ष-व्रजके बहुतसे स्थानोंमें यह उत्सव भाद्रपद, शुक्ल षष्ठी तिथिको मनाया जाता है। इनका आधार गर्ग-संहिता है-

अथ व्रजे पंच दिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पंचमिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिन मध्य देशे ॥
(बलभद्र खण्ड, गर्ग संहिता पृष्ठ २१०)

उक्त श्लोकके प्रमाणके अनुसार उस दिन भाद्रपद शुक्ल षष्ठी तिथि, बुधवार, एवं स्वाती नक्षत्र तथा तुला लग्न थी। 'दिन मध्यदेशे' के उल्लेखसे तो कोई शंकाका अवसर ही नहीं। अतः मध्यान्ह १२ बजे श्रीबलभद्र जन्मोत्सव मनाया जाता है।

इस प्रकार श्रीबलभद्र जन्म तिथिके सम्बन्धमें विभिन्न मतभेद लक्षित होते हैं। ऐसी दशामें इस शास्त्रीय विवेचन पर विद्वानोंका परामर्श आवश्यक है। आशा है मूर्धन्य विद्वान् इस लेख पर अपना विवेचन भेजकर पाठकोंको लाभान्वित करेंगे।

—विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
एम० ए० साहित्यरत्न

❀ विरहिन ❀

कोउ माई लैहै री गोपालै।
दधि कौ नाम श्यामसुन्दर रस बिसरि गयौ व्रजबालै ॥ १ ॥
मटकी सीस फिरति व्रज-वीथिनि, बोलति बचन रसालै।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँदलालै ॥ २ ॥
हँसति रिसाति बुलावति बरजति, देखौ इनकी चालै।
सूर स्याम बिन और न भावै, या बिरहिन बेहालै ॥ ३ ॥

श्रीभागवतधर्मके सम्बन्धमें

श्रीचैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्त

[संपादक महोदयके एक भाषणसे संग्रहीत]

सबसे पहले भागवत-धर्म किसे कहते हैं, इसे जान लेनेकी आवश्यकता है। जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता, चित्-अचित सबके आदि स्वयं अनादि, सर्वकारण-कारण षड्ऐश्वर्यशाली सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। वे अचिन्त्य-सर्वशक्तिमान और अखिलरसामृत-सिन्धु भी हैं। इन्हीं अद्वयज्ञान परतत्त्व स्वयं-भगवानके प्रतिपादक 'शब्द-ब्रह्म' का नाम ही 'भागवत' है। यह श्रीमद्भागवत निगमकल्पतरुका केवल रस-स्वरूप वह प्रपक्व फल हैं, जिसमें छिलका और गुठली रूप कुछ भी हेय अंश नहीं है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥
(श्रीमद्भा. १।१।३)

इस भागवतमें स्वयं-भगवानने कृपापूर्वक जीवमात्रके कल्याणके लिए जिस निर्मल आत्म-धर्मका उपदेश किया है, प्राणी-मात्रका वही शुद्ध और स्वरूप-धर्म है। जीवमात्रके इसी स्वरूप-धर्मको भागवत-धर्म कहते हैं। लोक पितामह ब्रह्मा, देवर्षि नारद एवं श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास आदि जिस धर्मका सदा-सर्वदा गान किया करते हैं, वेद-वेदान्त, उपनिषद्-पुराण और पांचरात्रादि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही जिस धर्मकी प्रतिष्ठा है, जीवमात्रके उस परम-नित्य-धर्म अथवा स्वरूप-धर्म जो भगवानकी सेवा है, को भागवत-धर्म कहते हैं। इसीलिए कहा गया है—

भाति सर्वं लोकेषु गीयते नारदादिषु ।
वर्त्तते सर्वं शास्त्रेषु तद् भागवतं विदुः ॥

अथवा 'भागवत' कहनेसे भगवद्भक्तोंका भी बोध होता है। अतः भगवद्भक्तोंके धर्मको अर्थात् भगवान्‌की सेवाको ही "भागवत-धर्म" कहते हैं। अतएव सभी दृष्टियोंसे भगवानकी सेवा ही भागवत-धर्म है। जीव चाहे वह मुक्तावस्थामें हो अथवा बद्धावस्थामें चौरासी लाख प्रकारकी किसी भी योनिमें हो—स्वरूपतः भगवानका ही दास है—'जीवेर स्वरूप हय नित्यकृष्णदास।' अतएव जीवमात्रका धर्म भागवत धर्म ही है। मूलतः जीवका यह शुद्ध धर्म एक ही प्रकारका होता है। परन्तु जीवके जड़-बद्ध होने पर उसका यह भागवत-धर्म दो प्रकारका हो पड़ता है—निरुपाधिक, सोपाधिक। निरुपाधिक धर्म देश, काल और पात्र आदिका भेद होने पर भी सर्वत्र एक ही होता है। परन्तु जड़ोपाधि प्राप्त जीवका देश-काल-पात्र भेदसे सोपाधिक धर्म देश-विदेशोंमें कालभेदसे पृथक्-पृथक् हो जाता है। उक्त

सोपाधिक-धर्म ही भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न नाम और प्रकारका होता है। परन्तु उपाधि दूर होने पर निरुपाधिक अवस्थामें सभी जीवोंका एक ही नित्यधर्म होता है। सोपाधिक धर्मको नैमित्तिक-धर्म भी कहते हैं। इस नाना-प्रकारके नैमित्तिक धर्मोंमें आबद्ध भगवद्विमुख बद्ध जीवोंको पुनः उनके स्वरूपकी उपलब्धि कराकर उन्हें नित्य कृष्ण-दास्यरूप-नित्यधर्ममें प्रतिष्ठित करनेके लिए परम-करुणामय भगवानने स्वयं जिन सरल सहज विधियों का उपदेश किया है, उसे ही भागवत धर्म कहते हैं—

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान ॥
(श्रीमद्भा. ११।२।३४)

इस भागवत-धर्मरूप स्व-सम्पत्तिको जिस प्रकार पूर्णरूपमें और जिस कुशलतासे श्रीराधाभाव-कान्ति से सुबलित श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी स्वयं-भगवान श्रीकृष्णने जगतमें प्रकाशित किया है, उतने सुष्ठ-रूपसे उससे पूर्व कोई भी भगवदवतार ऐसा नहीं कर सके हैं। इसीलिए श्रीरूप गोस्वामीने कहा है—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्वभक्तिश्रियम् ।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥
(विदग्धमाधव)

गीता आदि शास्त्रोंके अनुसार दुष्टोंके दमन तथा साधुजनोंकी रक्षा द्वारा युगधर्मकी प्रतिष्ठा करना ही भगवदवतारका कारण है। परन्तु स्वयं-अवतारी पुरुष श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुके अवतारका यह गौण कारण है; मुख्य कारण है—उन्नत-उज्ज्वल मधुररस की अधिष्ठात्री देवी महाभावस्वरूपिणी श्रीमती राधाके भावका स्वयं आस्वादन करके उसे जगतमें वितरण करना—जिसे आज तक किसी भी भगवद्-वतारके द्वारा पहले कभी भी वितरण नहीं किया गया है। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीने इस विषय को थोड़े ही शब्दोंमें बड़ी ही सुन्दरतासे व्यक्त किया है—

श्रीराधायाः प्रणय-महिमा कीदृशोवानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुत मधुरिमाकीदृशो वा मदीयः ।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेत्ति लोभा-
त्तद्भावाढ्यः समजनि शचिगर्भसिन्धौ हरीन्दुः ॥
(चै. च. १।१।६)

—अर्थात् श्रीमती राधिकाजीकी प्रणय-महिमा का रूप क्या है ? मेरा नित्यनवीन परमचमत्कार-पूर्ण माधुर्य—जिसका आस्वादन श्रीमती राधिकाजी करती है—कैसा है ? तथा मेरे उस माधुर्य का आस्वादन करनेसे श्रीमती राधिकाजीको कैसा सुख होता है ?—इन तीन भावोंका आस्वादन करने के लिए लोभ उत्पन्न होने पर रसिक चूड़ामणि श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीशची गर्भ-सिन्धुसे आविर्भूत हुए। यह आस्वादन भागवत-धर्मकी पराकष्ठा का विषय है। इस प्रकार श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षामें वेद-वेदान्त, उपनिषद्-पुराण, श्लोक, सूत्र और अनुव्याख्या—सभीका सार विद्यमान है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'श्रीशिक्षाष्टक' या दो-एक और भी फुटकर श्लोक आदिके अतिरिक्त स्व-रचित कोई ग्रन्थ नहीं है। फिर भी उन्होंने श्रीवास-भवन,

मायापुरमें अपने भक्तजनोंको जो सम्बन्ध तत्त्वकी शिक्षाएँ दीं, सार्वभौम भट्टाचार्य एवं प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे मायावादके प्रकाण्ड विद्वानोंको जो वेदान्तके गूढ़ार्थकी शिक्षा दी, श्री सनातन गोस्वामी एवं श्रीरूप गोस्वामीको जो वैधी एवं रागानुगाभक्ति रूप अभिधेय-तत्त्वका उपदेश किया, श्रीस्वरूप दामोदर द्वारा जो प्रयोजन-तत्त्वका प्रकाश करवाया तथा गंभीरा में अंतरंगजनोंके समक्ष स्वयं प्रेमावेश से सर्वोत्कर्षमयी परमचमत्कारपूर्ण प्रेमकी निगूढ़तम अधिरुढ़ आदि भावोंको प्रकट किया, उन-उन शिक्षाओंको उन-उन महात्माओंने अपने-अपने कड़चोंमें तथा ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध किया है। पुनः इन सबको एकत्र कर दार्शनिक चूड़ामणि श्रीजीव गोस्वामीपादने 'षट्संदर्भ' आदि ग्रन्थोंमें तथा रसिकचूड़ामणि श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्यचरितामृत' में गागरमें सागरकी भाँति भर रखा है।

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाएँ प्रधानतः तीन भागों में विभक्त हैं—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

वेदशास्त्र कहे सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन।
कृष्ण, कृष्ण-भक्ति, प्रेम तीन महाधन॥

इन तीन शिक्षाओंको सरलरूपसे समझनेके लिए श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रकाशित दशमूल शिक्षा का विश्लेषण करना परमावश्यक है—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्ति रसाब्धि
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति-कवलितान तद्विमुक्तांश्च भावान्।
भेदाभेद प्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्ति
साध्यं तत् प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥
(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

स्वयं भगवान गौरचन्द्रने इन दस तत्त्वोंका उपदेश किया है—

(१) आम्नाय वाक्य ही प्रधान प्रमाण हैं। उनके द्वारा निम्नलिखित नौ सिद्धान्तोंके उपदेश पाये जाते हैं।

(२) कृष्णस्वरूप हरि ही परमतत्त्व हैं।

(३) वे सर्वशक्तिमान हैं।

(४) वे अखिल रसामृत-समुद्र हैं।

(५) जीवसमूह हरिके विभिन्नांश तत्त्व हैं।

(६) तटस्थ गठनवशतः जीवसमूह बद्धदशामें प्रकृतिद्वारा कवलित हैं।

(७) तटस्थधर्मवशतः जीवसमूह मुक्तदशामें प्रकृतिसे मुक्त हैं।

(८) जीव-जड़ात्मक सारे विश्वका श्रीहरिसे युगपत भेद और अभेद है।

(९) शुद्ध भक्ति ही जीवके लिये साधन है।

(१०) शुद्ध कृष्ण-प्रेम ही जीवके लिये साध्य है।

नीचे संक्षेपमें इनमें से क्रमशः एक-एकका दिग्दर्शनमात्र कराया जा रहा है।

(१) आम्नाय वाक्य ही प्रधान प्रमाण हैं—

आम्नाय किसे कहते हैं--विश्वकर्त्ता ब्रह्मासे गुरुपरम्परा-प्राप्त ब्रह्मविद्या नामक श्रुतियोंको आम्नाय कहते हैं—

आम्नायः श्रुतयः साक्षाद्ब्रह्म विद्येति विश्रुताः।
गुरु परम्परा प्राप्ताः विश्व कर्त्तु हि ब्रह्मणः॥

इस ब्रह्मविद्याके मूल प्रकाशक तो स्वयं कृष्ण ही हैं, क्योंकि वेदादि उनके ही निःश्वाससे प्रकटित हैं। वे स्वयं कहते हैं--

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेद संज्ञिता ।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता यस्यां धर्मो मदात्मकः ॥
'तेन प्रोक्ता स्वपुत्राय मनवे इत्यादि ॥'
(श्रीमद्भा. ११।१४।३-४)

तदनन्तर ब्रह्माने सर्व प्रथम अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको सर्व विद्याओंकी प्रतिष्ठा उसी ब्रह्मविद्या का उपदेश किया—

'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥"

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी श्रुतिओंको ही प्रधान प्रमाण या स्वतः प्रमान निर्धारित किया गया है—

(क) 'प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण प्रधान ।'
(ख) 'स्वतः प्रमाण वेद प्रमाण शिरोमणि ।'

आम्नाय वाणीके अन्तर्गत चार वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक (ऋषि प्रणीत अनुष्टुप आदि छन्दोग्रन्थ), सूत्र और भाष्य ये सभी और इनके अनुगत आचार्योंद्वारा रचित व्याख्या आदि ग्रन्थ समूह भी हैं। इनमें भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्सा आदि दोष नहीं होनेसे प्रमाण हैं। इनमें भी श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ही अमल प्रमाण स्वीकार किया है—

'श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम् प्रेमापुमर्थो महान्,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोरमतमिदं तत्रादरो नः परः ॥'

श्रीमद्भागवत श्रीव्यासदेवके समाधिलब्ध परम तत्त्वके शाब्दिक अवतार हैं, जिन्हें 'निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि' एवं 'श्रीमद्भागवतं पुराणममलं' आदि श्लोकोंमें समस्त प्रकारके अनर्थरूपी मलोंसे रहित सर्वथा निर्मल एवं प्रमाण शिरोमणि घोषित किया गया है। गरुड़पुराणमें कहा गया है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः ।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ परिबृंहितः ॥

श्रीमद्भागवतमें भी—

सर्व वेदान्त सारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद् रतिः क्वचित् ॥
(भा. १२।१३।१५)

तात्पर्य यह कि श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महाभारतका तात्पर्य निर्णायक, गायत्रीका भाष्य तथा वेदोंके अर्थको स्पष्ट करने वाला शब्द-ब्रह्म है। इसके रसास्वादन करने वाले व्यक्तिको अन्यान्य शास्त्रोंमें कदापि रूचि नहीं हो सकती है। अतः श्रीमद्भागवत ही प्रमाण शिरोमणि हैं।

(क्रमशः)

श्रीमद्भागवतमें "दास्य भाव"

[वर्ष १०, संख्या १-२, पृष्ठ ३२ से आगे]

दास्यभाव मुक्तजनोंकी परमनिधि है, वैष्णवोंका कण्ठहार है और जनजीवनका प्राण है। अज्ञान-तिमिराच्छन्न जीवोंके लिये उज्वल प्रकाश है। माया भ्रमितोंका सीधासुलभ मार्ग है। आर्त एवं दुखियोंकी महौषधि है। वह मधुरातिमधुर है। अतएव वीतरागी, त्यागी, ज्ञानी और सद् वैष्णव, साधारण मानव, पशु,पक्षीतक इसे अपनाते आ रहे हैं। अपने अहंका विसर्जन कर इस भावमें मन-वचन-कर्मसे अपनेको समर्पित कर गौरवका अनुभव करते हैं। दास्यभावका उपासक भक्त अर्जुनके समान अपने शरीररूपी रथके इन्द्रियरूपी अश्वोंकी बागडोर लोकैकशरण्य परब्रह्म श्रीकृष्णके करकमलोंमें सौंप कर निर्भय हो जाता है। सर्वतोभावेन अपना समर्पण कर निश्चिन्त हो जाता है। एकमात्र श्रीहरिसे ही अपने सब प्रकारके सम्बन्ध जोड़ लेता है। भगवान् की सुख-सुविधामें अपनेको भूल जाता है तथा सब कुछ प्रभुका समझ लेता है। उसकी संसार-यात्रा एक सेवकके रूपमें चलती है। दास्य भक्तोंमें विविधता और अनेकरूपता है तथा उनकी परम्परा भी बड़ी लम्बी है। इसीसे वैष्णव महापुरुषोंने दास्य भावके भक्तोंके कुछ प्रकार स्थिर किये हैं, जिससे भावुक भक्तोंको भावके रसास्वादनका अत्यधिक आनन्द मिले और वह अनेकत्वका दर्शन कर सकें।

श्रीमद्भागवतमें अनेक भावोंके साथ दास्यभाव का जो संग्रह है,उस दास्यमें अनेक प्रकारके दास हैं। उनमेंसे इस समय अधिकृतदासोंकी चर्चा कर भाव महोदधिमें आपको अवगाहन कराना चाहता हूँ।

ब्रह्मा अधिकृतदास हैं। वे भगवान्की आज्ञासे ही सृष्टिकी उत्पत्तिका सारा कार्य करते हैं। कल्पान्त में जब भगवान्के नाभिकमलसे वेदमय विधाताने जन्म लिया, तो उसी कमल पर बैठे-बैठे उन्होंने चारों दिशाओंमें अपनी ग्रीवा घुमाकर लोकोंको देखनेके लिये अपनी दृष्टि दौड़ाई। तब उनके चार मुख हो गये। वे इधर-उधर देखते रहे, परन्तु कमल पर बैठे हुए विचार करने पर भी ब्रह्माने बहुत समय तक न तो अपनेको न अपनी उत्पत्तिके स्थानको ही जान सके। वे बारबार कमलनालमें आहंभावके कारण नीचेसे ऊपर तक घूमते रहे। अन्तमें अति अधिक श्रमित हो गये। तब उन्होंने समाधिका आश्रय लिया। उसके द्वारा उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें भगवान्के स्वरूपके दर्शन हुए। धीरे-धीरे उनका भ्रम दूर हो गया। वे प्रणत होकर स्तुति करने लगे—

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं-
जिघ्रन्तिकर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां-
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम्॥
तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं-
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्चलोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं-
यावन्नतेंऽघ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥

(भा० ३।९।५-६)

जो भक्त वेदरूपी वायुके द्वारा लायी गयी आपके चरणरूप कमल-कोशकी सुगन्धीको अपने कर्णपुटोंसे ग्रहण करते हैं, अर्थात् आपकी कथाका श्रवण करते हैं, हे नाथ ! उन अपने भक्तजनोंके हृदय कमलको छोड़ कर आप दूर नहीं जा सकते, क्योंकि उन्होंने परम उत्कृष्ट भक्ति रज्जुसे आपके चरणकमलोंको बाँध लिया है । जबतक ये (पुरुष) भय मिटानेवाले आपके चरणोंकी शरण नहीं लेते, तबतक इनके घर धन और मित्रहेतुक भय, शोक, स्पृहा, तिरस्कार, लोभ आदि सताते रहते हैं और तभीतक उसे मैं-मेरेपनका दुराग्रह रहता है, जो दुःखका एकमात्र कारण है। आपकी शरण प्राप्त करनेपर कुछ भी दुःख नहीं रहता ।

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य-
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग-
निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥
(भा० ३।९।२१)

आपके नाभिकमलरूप भवनमें मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें समाया हुआ है। आपकी कृपासे ही मैं त्रिलोककी रचनारूप उपकारमें प्रवृत्त हुआ हूँ। इस समय योगनिद्रका अन्त हो जानेके कारण आपके नेत्रकमल विकसित हो रहे हैं। ऐसे आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार ब्रह्माकी शरणागति देख तथा सृष्टि रचनाका अधिकारी जान भगवान्‌ने आदेश दिया—

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्गं उद्यममावह ।
तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रे मन्मां प्रार्थयते भवान् ॥
भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ।
ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मन् लोकान् द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥
(भा० ३।९।२९ ३०)

हे वेदगर्भ ब्रह्मा ! विषादसे आलस्य मत करो। सृष्टिके निमित्त उद्यम करो। जो तुम मुझसे प्राप्त करना चाहते हो उसका प्रबन्ध मैंने पहले ही कर दिया है। फिर भी तप करो। मेरे आश्रित विद्याको ग्रहण करो। इन दोनोंके प्रभावसे हृदयके भीतर आपको सब कुछ स्पष्ट दीखेगा।

भगवान् इस प्रकार आदेश देकर अन्तर्हित हो गये। फिर ब्रह्माने अनेक प्रकारकी सृष्टि रचना की। इस प्रकार बहुतसे युग बीत गये। जब कृष्णावतारका समय आया तो लोकपितामह ब्रह्मा गोप बालकोंकी मण्डलीमें परब्रह्म श्रीकृष्णको लीला करते देख श्रीकृष्णकी भुवन मोहिनी मायाके कारण मोहित हो गये और कृष्णको साधारण गोप बालक जान उनके पासके वत्सों एवं गोप बालकोंका हरण कर लिया। वे उनके महत्वको न समझ सके और अपनी महत्ता प्रकट करने लगे। लीला निकेतन श्रीकृष्ण ब्रह्माकी चातुरी समझ गये। उनके दंभको चूर्ण करनेके लिये उन्होंने अपनी नई सृष्टि कर ली।

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्करांघ्र्यादिकं,
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयोयावद् विहारादिकं,
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥
(भा० १०।१३।१६)

उन गोपबालकोंके जैसे शरीर, जैसी अवस्था, जैसे गहने कपड़े थे; जैसा उनका स्वभाव, गुण,

नाम, रूप था, जैसे हाथ-पैर आकृतियाँ थीं और जैसी उनके पास यष्टिका, सींग वेणु विहारादिक थे, उसी प्रकारके सब निर्मित कर यह सारा जगत विष्णुमय है' इस प्रसिद्ध वाणीके अनुसार यथार्थ रूपसे सर्वस्वरूप भगवान् शोभित हुए।

ऐसा देख उस समय ब्रह्मा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। उन्होंने सोचा इन्हें तो मैं चुराकर अन्यत्र ले गया था और वहाँ रखकर आया हूँ; यहाँ वत्स एवं ग्वालबाल उसी प्रकारके कैसे आ गये? ब्रह्माजीने दोनों स्थानों पर दोनोंको एक साथ ही देखा। तब वे विचार सागरमें डूब गये। एकबार फिर उन्होंने व्रजमें देखा तो कालिन्दनन्दिनीके तट पर उसी प्रकार हास-परिहास करते हुए सब स्थित हैं। विधाता दौड़-धूप करते हुए थक गये। वे लीला निकेतनकी थाह लेने चले थे, पर स्वयं ही एक क्रीड़ाका पात्र बन गये। क्या कोई व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलाका रहस्य जान सकता है? अन्तमें ब्रह्मा श्रमित हो गये, निःसहाय हो गये। तब प्रभुने कृपाकी तथा उन्हें अपनी लीलाका ज्ञान कराया। उनका अभिमान चूर्ण हो गया। तब वे साधनहीन होकर चरणोंमें गिर पड़े—

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुजलैरकृताभिषेकम्॥
उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन्।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः।
सवैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः
सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया॥

(भा० १०।१३।६२, ६३, ६४)

भगवान्का दर्शन कर ब्रह्माजी शीघ्र ही अपने वाहन हंससे उतर पड़े और पृथ्वी पर सोनेके दण्डके समान गिरकर साष्टांग प्रणाम करते हुए चारों मुकुटोंकी कोटिसे चरण युगलोंको छू कर आनन्दके अश्रुओंके सुन्दर जलसे चरणोंका अभिषेक करने लगे।

ब्रह्मा बार-बार पहले देखी भगवान्की महिमा का स्मरण करते जाते थे और उठ-उठकर चरणोंमें पड़ते जाते थे। इस प्रकार बहुत देर तक करते रहे।

फिर धीरेसे उठकर आँखें पोंछ भगवान्की ओर देख ग्रीवा नीचीकर हाथ जोड़ विनय सहित काँपते-काँपते गद् गद् वाणीसे स्तुति करने लगे—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

(भा० १०।१४।१)

मेघके समान सुन्दर शरीर धारण करनेवाले, बिजलीके समान पीला पीताम्बर पहने गुञ्जाके कर्णभूषण धारण किये, मयूरपिच्छसे शोभायुक्त वनमाला पहने भातका कवल हाथमें लिये बेत, सींग और वंशीसे शोभित कोमल चरणारविन्दवाले हे नन्दनन्दन! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार प्रणाम करके भगवानके व्यापक रूप का और उनकी लीलाओंका वर्णन कर वह गोप बालकों और गोप रमणियोंकी महिमाका गान करते-करते फिर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्,
क्ष्मानिर्जर द्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रु,
गाकल्पमार्कमर्हन्भगवम् नमस्ते ॥

(भा. १०।१४।४०)

हे श्रीकृष्ण ! हे यादवोंके कुलरूप कमलको प्रीति देनेवाले ! हे पृथ्वीके देवता ब्राह्मण, पशु, समुद्र आदिकी वृद्धि करने वाले ! हे पाखण्डरूप अन्धकारके नाशक ! हे पृथ्वीके राक्षसतुल्य-कंसादिकोंके द्रोही ! हे सूर्यपर्यन्त सकलचराचरके पूज्य ! हे भगवान् ! कल्पपर्यन्त आपको मेरा नमस्कार है।

ऐसी स्तुतिके साथ तीन प्रदक्षिणा कर बार-बार चरणोंमें प्रमाण कर लोकोंके विधाता अपने लोकको चले गये।

भगवान्के अधिकृतदासोंमें शिवकी भी गणना की जाती है। शिव मङ्गलमय हैं। वैष्णवाग्रगण्य हैं। उनकी त्याग-तपस्या, भगवान्के नामोंका निरन्तर तैलधारावत् जप, ध्यान प्रशंसनीय है। शंकर, भगवान्के आदेशानुसार सारे कार्योंको करते हुए भी भगवान्की रूपमाधुरीमें लीन है। उन्हें श्रीकृष्ण प्यारे हैं, व्रज प्यारा है। इसीसे श्रीकृष्णके प्रादुर्भाव की चर्चा सुनकर वे श्रीकृष्णके दर्शनोंका लोभ संवरण न कर सके और अन्तमें नटखट नन्द-लाड़िलेका दर्शन कर ही उन्होंने शान्ति प्राप्त की, अपने प्यासे नेत्रोंको सफल किया।

श्रीमद् भागवतमें शंकरके द्वारा भगवान्की स्तुतिका बहुत थोड़ासा प्रसंग मिलता है। जिस समय भगवती सती अपने पिता दक्षके यज्ञमें जा रही थी, उस समय भगवान् आशुतोषने उन्हें समझा बुझाकर रोकना चाहा था, पर वे रुक नहीं रही थी, तब उन्होंने कहा था देवि—

सत्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे मनसा विधीयते॥

(भा. ४।३।२३)

'वसुदेव' यह नाम शुद्ध अन्तःकरणका द्योतक है। क्योंकि वैसे अन्तःकरणमें भगवान्की स्पष्ट प्रतीति होती है। ऐसे अन्तःकरणमें ही भगवान् वासुदेव जो इन्द्रियोंसे अगोचर हैं, विराजते हैं। उनको मैं नमस्कार द्वारा सेवन करता रहता हूँ।

उन भगवान्के साथ वह मेरा भी अपमान करेगा। उसको मैं सहन नहीं कर सकूँगा। परन्तु सती नहीं मानी और उसका परिणाम दुःखद ही रहा। सती को प्राणत्याग करना पड़ा।

यहाँ दासभक्तोंके प्रसङ्गमें यमराजकी भक्ति भावनाका वर्णन भी बड़ा ही उपादेय है। पापी अजामीलकी मृत्यु हो चुकी है। उसे उसके कर्मोंके अनुसार लोक या स्थान मिलना चाहिये। परन्तु उसने मृत्युके समय विकल होकर आर्तभावसे अपने पुत्र नारायणको पुकार लिया। उससे परिस्थिति विचित्र हो गई। उसके कर्मोंके कारण यमके दूत वहाँ पहुँचे

और अन्त समयमें भगवन्नाम लेनेके कारण विष्णु-दूत भी वहाँ आ उपस्थित हुए। दोनों ही अपने स्वामीकी आज्ञाके पालक थे। अतः दोनोंमें परस्पर लम्बा विवाद छिड़ गया। उसमें विजय विष्णुदूतोंकी हुई। यमदूत पराजित होकर यमराजके पास आकर कहने लगे, जहाँ हम नियमानुसार गये थे, वहाँ हमारी कुछ भी नहीं चली। इससे हम आपसे पूछते हैं कि—

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो।
त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्ति हेतवः॥

(भा. ६।३।४)

हे प्रभु! सात्त्विक, राजस और तामस कर्म करनेवाले जीवलोकको कर्मका फल देनेवाले न्यायधीश इस जगतमें कितने हैं?

यदि शासन करनेवाले अनेक हैं, तो जगतमें अव्यवस्था फैल जायगी और जिस प्रकारका ठीक न्याय मिलना चहिये वह दुर्लभ हो जायगा।

तब भगवान्के पावन चरणोंका स्मरण करते हुए गद् गद् वाणीसे भावविभोर होकर यमने कहा—

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतंप्रोतं पटवद्यत्र विश्वम्।
यदंशतोऽस्यस्थिति जन्मनाशा तस्योतवद्यस्यवशे च लोकः॥

(भा. ६।३।१२)

स्थावर और जंगम इन दोनोंका स्वामी हमसे बिलकुल भिन्न है। हम तो केवल जंगमोंके, उनमें केवल मनुष्योंके, उसमें भी केवल पापियोंके ही स्वामी हैं, हम उस परमेश्वरकी आज्ञामें रहकर कार्य करते हैं जिनके अंशरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि इस जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं तथा नाकमें नाथसे बँधे हुए बैलोंके समान जिसके वशमें है, उन सबके स्वामी परमेश्वर मैं तन्तुओंमें कपड़ेके जैसे यह जगतमें ओतःप्रोत है।

दूतों! मैं इन्द्र, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शङ्कर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वेदेवता, आठों वसु, साध्य, उनचास पवन, मरुत, सिद्ध, ग्यारहोंरुद्र, रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित भृगु आदि प्रजापति और बड़े-बड़े देवता—सबके-सब सत्त्व-प्रधान होने पर भी उनकी मायाके अधीन हैं तथा भगवान कब क्या किस रूपमें करना चाहते हैं—इस बातको नहीं जानते। तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है।

प्रिय दूतों! तुमने बड़ी भारी त्रुटि की है। जिसने एकबार भी भगवान्का नाम सच्चे मनसे ले लिया है, वह पवित्र हो जाता है। जो अन्त समयमें भगवान्का नाम लेता है उसकी तो महत्ता ही निराली है। गिरता, पड़ता, खेलनिका परिहाससे भी जो भगवान्के पावन न नामोंका उच्चारण कर लेता है वह महाभाग्यवान है। आजसे तुम मेरी इस बातका स्मरण रखना—

जिह्वा न वक्ति भगवद् गुणनामधेयं-
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि-
तानानयध्वमसतोऽकृत विष्णुकृत्यान्॥

(भा०६।३।२९)

जिस पुरुषकी जिह्वा भगवान्‌के नामका गुणगान नहीं करती, जिसका चित्त भगवान्‌के चरणारविन्दों का स्मरण नहीं करता, जिसका शिर एकबार भी कृष्णको नमस्कार नहीं करता, जो भगवान्‌का कार्य-- सेवा नहीं करता, उसे ही तुम्हें लाना चाहिये। दूसरों को हाथ न लगाना—

ऐसा कह कर यमराज भगवान्‌के ध्यानमें मग्न हो गये और प्रणत होकर कहने लगे—

तत्क्षाम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥
(भा० ६।३।३०)

हे पुराण पुरुष भगवान् नारायण ! मेरे दूतोंने जो अपराध किया है, उन्हें क्षमा करदें। हमारे जैसे अज्ञानी हाथ जोड़ कर सम्मुख खड़े निजदासों पर क्षमा करना आपके लिये उचित है। हम भूमा पुरुष आपको प्रमाण करते हैं।

यमराजकी भक्तिभावनाके अनन्तर इन्द्रकी भक्ति का भी स्वरूप दर्शन योग्य है।

व्रजमें नन्द-यशोदाकी निरतिशय प्रेम भक्तिके कारण परात्पर श्रीकृष्णने जन्म ले लिया है और बाललीला करते हुए अपने बन्धु-बान्धवों, माता यशोदा और गोप-गोपियोंको आनन्दप्रदान कर रहे हैं। एक समयका प्रसङ्ग है—नन्दराजकुमारने व्रजमें पकवानोंकी तैयारी होती हुई देखी। बालस्वभावके कारण वह अपने बाबा नन्दसे पूछ बैठे—"बाबा ! ये सारी तैयारियाँ किसके लिये हो रही है ? यह पूजन किसका किया जायगा ?" उस समय बाबाने और वृद्धगोपोंने बताया कि हम व्रजकी सुख समृद्धि के लिये इन्द्रकी पूजा प्रति वर्ष करते हैं और पूजाके फलस्वरूप व्रजमें वर्षा होती है। इससे गोप, ग्वाल और गायें सभी सुखसे रहते हैं। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने सभीको सावधान करते हुए यह कहा कि आजसे इन्द्रकी पूजा न कर गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा करो। इनसे हमें सभी प्रकारके सुख मिलते हैं। तृण, जल आदि प्राप्त होता है। कन्हैयाने बातें इस चतुराईसे कहीं कि सभी व्रजराजकी बातें मान गये और इन्द्र-पूजाके स्थानपर बड़े धूम-धामके साथ गोवर्द्धनकी पूजा हुई। उनको विविध प्रकारकी वस्तुएँ भोगमें रक्खी। फिर सभीने प्रसाद रूपमें उसे ग्रहण किया बाकी बचे प्रसादको जन सभाजमें बाँट दिया गया। इधर यह आश्चर्यजनक घटना हुई कि भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराजके ऊपर दूसरा विशाल शरीर धारण कर भोग लगाया और सभीको अपनी मेघ गम्भीर वाणीसे आनन्दित किया।

इस पूजाकी सूचना इन्द्रको पहुँची। इससे वह क्रुद्ध हो गया और श्री-मदमें आकर सब कुछ भूल गया—

इन्द्रस्तदाऽऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहितां नृप ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः॥
(भा० १०।२५।१)

इन्द्रने अपनी उस पूजाको न होती देख, भगवान् श्रीकृष्ण ही जिनके नाथ हैं उन नन्दादिक गोपोंपर क्रोध किया। वह कहने गया—

अहोश्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥
(भा० १०।२५।३)

अहो। वनमें रहनेवाले गोपोंके मदकी महिमा तो देखो, जिन्होंने एक साधारण मनुष्य श्रीकृष्णकी शरण ले देवताओंका अपराध करना भी आरम्भ कर दिया।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥
(भा १०।२४।५)

वाचाल, बालक, पण्डितंमन्य, अविनीत, अज्ञ, मर्त्य धर्मा श्रीकृष्णका शरण ले, गोपोंने मेरा अप्रिय किया है।

इन्द्र अपने राजमद और अभिमानमें चूर होकर भगवान्‌की अवज्ञा करने लगा और उसने सांवर्तक आदि गणोंको बुलाकर नन्दगोकुलको नष्ट करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं भी ऐरावत पर आसीन होकर आगे बढ़ा। मेघोंने बड़ी मूसलाधार वर्षासे व्रजको डुबानेका निश्चय कर लिया। गोप, ग्वाल और गायें सभी अति वृष्टिसे विकल हो गये। उन्हें उससे बचने का कोई भी उपाय न सूझा तब श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर अपनी रक्षाकी प्रार्थना की। श्रीकृष्णने हँसते हुए गोपोंसे कहा, यह इन्द्रकी करतूत है। मैं सब कुछ समझ गया हूँ। इसका उपाय अभी किये देता हूँ—

तत्र प्रतिविधिं सम्यक् आत्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥
नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीश विस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥
(भा. १०।२५।१६-१७)

यहाँ आत्म योगसे इसका ठीक उपाय करूँगा और मूर्खतासे लोकपालाभिमानियोंके ऐश्वर्य-मदको हरण करूँगा। सत्व गुणवाले देवताओंको अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान नहीं करना चाहिए, परन्तु इस समय वैसा दिखाई दे रहा है, इसीसे इन्द्र जैसे दुष्ट लोगोंका मान भंग करूँगा, इसी रूपमें मेरा उनपर अनुग्रह होगा।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥
इत्युक्त्वैकेनहस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम् ।
दधारलीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥
(भा. १०।२५।१८-१९)

अतएव गोकुल, जिसका एकमात्र मैं ही नाथ हूँ, मैंने जिसे अपना बना लिया है और जो मेरी शरणमें है, उसकी योगबलसे मैं रक्षा करूँगा, क्योंकि शरणागतकी रक्षा करना मेरा परम धर्म है।

ऐसे कहकर बालक जिस प्रकार वर्षाकालीन छत्राकको आपने हाथसे उखाड़ लेता है, उसी प्रकार भगवान्‌ने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उठाकर धारण कर लिया। गोप गायोंकी रक्षा की। व्रजको सुखी किया। इन्द्र इस लीलाको देखकर विस्मित हो गया। उसका सारा मद चूर्ण हो गया। वह गोलोकसे सुरभिको लाया और उसे आगे कर ऐरावत हाथीको बहुत दूर छोड़ पाहि-पाहि कहता हुआ श्रीकृष्णके सुकोमल चरणोंमें आ गिरा।

विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्क वर्चसा ॥
दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
नष्ट त्रिलोकेशमद इन्द्रआह कृताञ्जलिः ॥
(भा० १०।२७।२-३)

अपराधी इन्द्र लज्जित हो एकान्तमें समीप आ सूर्यके समान तेजवाले किरीटसे भगवान्‌का चरण-स्पर्श करने लगा। अमित तेज श्रीकृष्णका प्रभाव उसने देख सुन लिया तब वह अपनेमें त्रिलोकीनाथ होनेके मदको छोड़ कर बोला—

विशुद्धसत्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्।
मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः॥
(भा० १०।२७।४)

आपका स्वरूप शुद्धसत्वमय, शान्त, सर्वज्ञ, रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित है। यह मायामय संसार अज्ञानसे ही आपमें प्रतीत होता है।

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे, मानं विधुन्वञ्जगदीश मानिनाम्॥ (भा० १०।२७।६)

आप जगतके पिता, गुरु, नियन्ता और दुरत्यय काल मूर्ति हो। जगतके हित करनेवाले जगदीश्वर हम हैं—ऐसे अभिमानियोंके मदको दूर कर दंड देते हुए अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण कर लीला करते हो।

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन-
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम्।
हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम्॥
(भा. १०।२७।७)

जो मेरे समान जगदीशपनका अभिमान रखने वाले मूर्ख हैं, वे भयके समयमें भी निर्भय आपका दर्शन कर तुरन्त अपने अभिमानको त्याग गर्व-रहित हो उत्तम भक्ति मार्गका सेवन करते हैं। यह जो आपकी लीला है वह दुष्ट पुरुषोंके लिये दण्ड रूप है।

हे प्रभो! मुझ अपराधी पर कृपा कीजिए, जिससे मेरी दुष्टमति दूर हो।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः॥
(भा. १०।२७।१०)

महात्मा सर्वान्तर्यामी वासुदेव यादवोंके पति भगवान श्रीकृष्ण आपको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार इन्द्रकी दीनता भरी प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण मेघ गम्भीर वाणीसे बोले—मैंने तुम पर अनुग्रह करने और तुम्हारा बढ़ा हुआ अभिमान चूर्ण करनेकी इच्छासे ही तुम्हारा यज्ञ भंग किया है। तुम देवताओंका राज्य पाकर उन्मत्त हो गए थे, सो तुमको अपना स्मरण दिलवानेको यह कार्य किया। मेरा यह सिद्धान्त है—

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति।
तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्॥
(भा. १०।२७।१६)

ऐश्वर्य और लक्ष्मीके मदसे अन्धा पुरुष दण्ड हाथमें लिये मुझे नहीं देखता है। तब जिस पर मैं कृपा करना चाहता हूँ उसकी संपदा भ्रष्ट करके उसे सही मार्ग पर लाता हूँ। मैंने तुम्हें श्रीवृद्धिके कारण ही यह दण्ड दिया है।

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम्।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः॥
(भा. १०।२७।१७)

हे इन्द्र ! अब तुम जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। मेरी आज्ञामें रहो। गर्व छोड़ अपने अधिकारमें सावधान होकर रहो।

कुबेरकी भक्ति भावना भी श्रीमद्भागवतमें अनोखे ढंगसे वर्णित हैं। इसे भी हम अधिकृत दासोंकी श्रेणीमें ग्रहण कर सकते हैं।

एकबार नन्दरायजीने एकादशीका निराहार व्रत किया और भगवानका पूजन किया तथा उसी दिन रातमें द्वादशी लगने पर स्नान करनेके लिये यमुना जीके जलमें प्रविष्ट हुए। परन्तु उस समय आसुरी वेला होनेके कारण वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुणके पास ले गया। नन्दरायजीको न देखकर सभी गोप हे राम ! हे कृष्ण ! इस प्रकार पुकारने लगे। भगवानने यह जानकर कि मेरे पिताको वरुणका कोई सेवक पकड़ लेगया है, वे तुरन्त ही वरुणके पास पहुँचे—

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया।
महत्या पूजयित्वाऽऽह तद्दर्शनमहोत्सवः॥
(भा. १०।२८।४)

वरुणने अपने यहाँ भगवानको पधारे देखकर बड़ी भक्ति भावसे श्रीकृष्णकी पूजा की और भगवानके दर्शनसे उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। उसके बाद वे प्रणत होकर भगवानकी स्तुति करने लगे—

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः॥
नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना॥
अजानता मामकेन मूढ़ेनाकार्यवेदिना।
आनीतोऽयं तव पितातद् भवान् क्षंतुमर्हति॥
ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक्।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल॥
(भा. १०।२८।५-८)

प्रभो ! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ। भगवन् ! जिन्हें भी आपके चरणोंकी सेवाका सुयोग मिला है, वे भवसागरसे पार हो गये।

भगवन् ! हे ब्रह्म मूर्ति परमात्मा ! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है। आपके स्वरूपमें जगत की सृष्टिकी कल्पना करनेवाली मायाका नाम तक नहीं सुना जाता है। मेरा यह सेवक बड़ा मूढ़ और अनजान है। वह अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता। वही आपके पिताजीको ले आया है। आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिए।

हे कृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं। इसलिये मेरे ऊपर कृपा कीजिए। हे पितृवत्सल गोविन्द ! आप अपने पिताको लेकर पधारें।

श्रीकृष्ण वरुण को क्षमा प्रदान करते हुए अपने व्रजमें लौट आये। यहाँ पर सभीने नन्दका दर्शन कर श्रीकृष्ण लीलाका श्रवणकर आनन्दसे गद् गद् हो गये। क्रमशः

ले० वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

दैन्य निवेदन

[श्रीव्यासपूजाके अवसरपर श्रीगुरुदेवके चरणोंमें]

भावों के दो सुमन चयन कर,
आया दीन भिखारी ।
कृपा निकेतन भव दुःख भंजन,
चाहे शरण तिहारी ॥
साधन भजन भक्ति नहीं मुझमें,
महिल पाप रत भोगी ।
काम क्रोध मद लोभ मोहसों,
बना हुआ इक रोगी ॥
पर निन्दा स्वार्थ रत निशि दिन,
विषय सम्पदा चाही ।
नाम सुधा रस छाड़ि विषयरस,
पीने ही का राही ॥
अवगुण बचा न मुझसे स्वामी,
गुण का लेश न मुझमें ।
संतन का तज संग, कुसंगत,
करने की इच्छा मुझमें ॥
मेरी दशा निरख कर स्वामी,
दान दया का कर देना ।
अपना ही इक दास समझ,
पग तल रज को दे देना ॥

निवेदन—गुरु-कृपा-प्रार्थी
सत्यपाल ब्रह्मचारी

श्रीभक्तिविनोद-ठाकुरकी आरती

[उनकी आविर्भाव-तिथि-पूजाके अवसर पर]

श्रीनवद्वीप मण्डल कलियुगके समस्त तीर्थोंके शिरोमणि है। उसी नवद्वीप मण्डलके अन्तर्गत उला या वीरनगर नामक ग्राममें वर्तमान युगके शुद्ध भक्ति श्रोतको पुनः प्रवाहित करनेवाले मूल पुरुष ॐविष्णुपाद श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर ३५२ श्रीचैतन्याब्द या २ सितम्बर सन् १८३८ ई० रविवार, शुक्ल त्रयोदशी तिथिको पूर्वाह्न ७।१३ बजे आविर्भूत हुए थे।

ठाकुर भक्तिविनोदजी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके पश्चात्के युगमें चैतन्य लीलाके व्यासावतार हैं—शुभक्तिहीन शुष्कमरुभूमिमें भक्तिगंगाको पुनः प्रवाहित करने वाले भगीरथ हैं। वे सर्व-वेदान्तसार श्रीमद्भागवतके गूढ़ तात्पर्यके मूर्तिमान-विग्रह हैं। वे श्रीगौराङ्गके नित्य संगी हैं। गौरसुन्दर जिस प्रकार अपनी भाव-कान्तिको अपने अन्तरंग भक्तोंके निकट छिपा कर नहीं रख सके, उसी प्रकार श्रीभक्तिविनोद ठाकुर भी अपने आचार-प्रचारके बीच अपनेको गुप्त नहीं रख सके हैं। वे वह साक्षात् गौरशक्ति हैं—जिस गौर-शक्तिके बिना जगतमें गौर-नाम, गौर-धाम और गौर-कामके संकीर्तनकी प्रबल बन्याका प्रवर्त्तन होना असंभव है, यह उनके आचार-प्रचारसे व्यक्त हो पड़ा है।

कलिकालेर धर्म-कृष्णनाम-संकीर्तन।
कृष्ण शक्ति बिना नहे तार प्रवर्तन॥

श्रीगौरसुन्दर जिस प्रकार महावदान्य हैं, ठाकुर भक्तिविनोद भी उसी प्रकार महावदान्य हैं। अथवा गौर सुन्दरकी महावदान्यता ठाकुर भक्तिविनोदकी महावदान्यताके प्रभावसे ही वर्तमान समयमें संसारके जीवोंके लिये उपलब्धिकी वस्तु हुई है। गौरसुन्दर जिस प्रकार कृष्ण प्रेमके दाता हैं, उसी प्रकार ठाकुर भक्तिविनोद भी गौर-कृष्ण प्रेम प्रदाता हैं। गौरसुन्दर विषयजातीय कृष्ण है और श्री भक्तिविनोद ठाकुर आश्रयजातीय कृष्ण हैं। जिस प्रकार गौरसुन्दरका नाम श्रीकृष्णचैतन्य है, उसी प्रकार श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका नाम भी श्री सच्चिदानन्द भक्तिविनोद है। गौरसुन्दरकी लीला की भाँति गौरजन ठाकुर भक्तिविनोदकी लीला भी महावदान्य है अर्थात् नाम-प्रेम प्रचार करना है।

ठाकुर भक्तिविनोदमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका प्रेम-प्रचार और पाषण्डदलन लीला तथा श्रीरायरामानन्द, स्वरूपदामोदर, श्रीसनातन-रूप रघुनाथ-जीवका रससिद्धान्त और भक्तिसिद्धान्त प्रचारकी लीला एकत्र दृष्टिगोचर होती है। "कृष्णेर संसार कर छाड़ि अनाचार। जीवे दया कृष्णनाम सर्वधर्मसार॥" इस वाणीमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने निखिल सात्वत शास्त्रोंका सार भर कर जगतको उपदेशके रूपमें वितरण किया है। उनके चरित्रमें दैन्य, दया, सहिष्णुता, दूसरोंको मान देना, स्वयं मानसे बचना,

फल्गुत्यागसे घृणा तथा आत्माका सहज सरल स्वास्थ्यकी सर्वोत्तम अवस्था आदिका अपूर्व देदीप्यमान समावेश देखा जाता है । उन्होंने जीवमात्रके प्रधानतम शत्रु—फल्गुत्यागके विरुद्ध जिस प्रकार अपनी लेखनी उठायी है, उस प्रवृत्तिको दूर करनेके लिये जिस कठोर आदर्शको अपनाया है, वैसा ऊच्च आदर्श और कहीं भी अन्यत्र नहीं दृष्टिगोचर होता है । जीवके प्रति दया और कृष्णनाम कीर्तनके द्वारा ही कृष्णके संसारमें स्थिति होती है । समस्त जीव कृष्णके नित्य दास हैं, कृष्णके संसारके नित्य संसारी हैं । उन एकमात्र सेव्य-तत्त्व श्रीकृष्णकी सेवासे विमुख होने पर जीवको अशेष क्लेश और अशान्ति के भीषणतम घोर संसारमें निमज्जित होना पड़ता है । इन्हीं सब सिद्धान्तोंसे पूर्ण उपदेशोंका अपूर्व संग्रह श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके अप्रकृत साहित्यमें सर्वत्र ही दृष्टिगोचर पर होता है ।

मायाके संसार-समुद्रसे उद्धारके लिये श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने समग्र मनुष्य जातिको ही नहीं अपितु निखिल जीवजातिको सर्वोत्कृष्ट सुन्दर राजपथ दिखलाया है । 'कृष्णेर संसार कर'—इस महावाक्य का तात्पर्य है—व्रजरसमें सराबोर स्वरूपदामोदर, सनातन गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीरघुनाथ गोस्वामी, श्रीजीव और श्रीकृष्णदास - कविराज गोस्वामीके आनुगत्यमें कृष्ण-सेवाकी प्राप्ति करना । उन्हीं व्रजवासियोंके अभिन्न मूर्त्ति हैं—श्रीठाकुर भक्तिविनोद । आज उनकी आविर्भाव-तिथि-पूजाके शुभ-अवसर पर उनकी कृपा-भिक्षाकी प्रार्थना करते हैं । (गौड़ीयसे अनुदित)

श्रीश्री भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव

विगत ३ आश्विन, १६ सितम्बर, शनिवारको समितिके समस्त मठोंमें आधुनिक कालमें शुद्ध भक्ति की धाराको जगतमें पुनः प्रकटित करनेवाले सप्तम गोस्वामी श्रीसच्चिदानन्द-भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव विशेष समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है । श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ, मथुरामें प्रातःकाल त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीगौड़ीय पत्रिकासे परमाराध्यतम श्रीश्रीआचार्यदेव द्वारा लिखित एक प्रबन्ध पाठ किया । दो-पहरमें श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीको विशेषरूप से भोग-राग हुआ । शामको एक विशेष धर्मसभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीनित्यकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीशेषशायी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास व्रजवासी एवं अंतमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीश्रीठाकुर भक्तिविनोदजी के अतिमर्त्य जीवन-चरित्र और उनकी अप्राकृत शिक्षाओं पर सुन्दररूपसे प्रकाश डाला ।

—प्रकाशक